



शार्वरी सीखने लगी है

पवित्रा संतोष



बिखरे हुए, बिना कंघी किए बाल, चेहरा बस धुला हुआ-सा लग रहा था। मैली यूनिफॉर्म में 8 साल की वह बच्ची कक्षा के दरवाजे पर आकर बोली, "मे आई कम इन मैम?"

सिर झुकाकर कुछ लिख रही शिक्षिका के पास इतना भी समय नहीं था कि उसे अन्दर बुलाएँ। उन्होंने बस "हूँ" कह दिया। वह आखिरी कतार के कोने में बैठ गई। उसकी आवाज़ से ही शिक्षिका जान गई थी कि वह कौन है। उनके मन में उस बच्ची के प्रति थोड़ा अनदेखी का भाव था और उसकी अस्वच्छता को लेकर झुँझलाहट भी। वह 'शार्वरी' थी...।

शार्वरी रोज़ाना जल्दी कक्षा में आती थी, उसके देरी से आने के उदाहरण बहुत कम थे। उस दिन उसके देरी से आने पर शिक्षिका को आश्चर्य तो हुआ, लेकिन उसके मैले कपड़ों और बिखरे बालों को लेकर नाराज़गी भी थी। उन्होंने देखा कि आज शार्वरी के चेहरे पर थोड़ी उदासी और घबराहट थी, उन्होंने उसे पुकारा—"शार्वरी..."

विद्यालय और शिक्षकों से गहरा लगाव रखने वाली शार्वरी, एक ही क्रम में आखिरी कतार से कूदकर पहली कतार में आ खड़ी हुई। उसकी आँखों में अजीब-सी चमक थी! शिक्षिका ने उसके सिर पर स्नेह से एक धौल जमाते हुए कहा, "इतनी बार कहने पर भी तुम नहीं बदलतीं...। क्या तुम्हें ठीक से आने में कोई समस्या है? खैर... आज तुम साफ़-सुथरी आई हो।" फिर उन्होंने झिड़कते हुए पूछा, "बताओ देरी क्यों हुई?"

गदगद स्वर में शार्वरी रुक-रुककर उत्तर देने लगी :

"मिस... घर में मुझे विद्यालय के लिए तैयार करने वाला कोई नहीं है। माँ नहीं हैं मिस! बस पापा हैं। वे सुबह 6 बजे काम पर जाते हैं तो रात 9 बजे लौटते हैं। ऑटो चलाते समय कभी-कभी तो घर भी नहीं आते। मैं और छोटा भाई, हम दोनों अकेले ही रहते हैं। आज पड़ोस वाली आंटी के पास बाल बनवाने गई थी, इसलिए थोड़ी देर हो गई, सॉरी मिस", उसने कहा।

शिक्षिका कुछ पल मौन रही, और एक लम्बी आह भरते हुए बोली, "ओह... अच्छा, मुझे पता नहीं था, मुझे माफ़ कर दो बिटिया!"

"एक काम करो। तुम अपने पापा से कहकर अपने बाल थोड़े छोटे करवा लो। तुम्हें बाल सँवारना मैं सिखा दूँगी। फिर तुम हर दिन खुद तैयार हो सकोगी", वे मुस्कुराईं।

वहाँ से उन दोनों के बीच एक नया रिश्ता शुरू हुआ। अगले दिन शार्वरी साफ़ कपड़े पहनकर और अच्छे से तैयार होकर आई थी। उस दिन उसके पिता ने ही उसे तैयार किया था, क्योंकि पिछले ही दिन शिक्षिका ने उसके पिता को फ़ोन किया था।

शिक्षिका ने शार्वरी को पास बुलाया, और उसकी पीठ थपथपाई। अब तक कभी उसके बहुत करीब न आने वाली शिक्षिका ने जब उसके सिर पर हाथ फिराया तो उसकी खुशी दोगुनी हो गई। उसने बड़े उत्साह से कहा, "मिस, मेरा होमवर्क देखिए!"

शिक्षिका ने होमवर्क चेक किया और बस इतना कहा, "अच्छा, क्या तुम इसे एक बार पढ़ोगी?" उसके मन का आत्मविश्वास जाग उठा। वह एक ही लय में पढ़ने लगी। ऐसा लग रहा था जैसे उसे अक्षरों की पहचान तो थी, लेकिन स्पष्ट पढ़ने में वह थोड़ी हिचकिचा रही थी। घर का माहौल पढ़ाई के अनुकूल नहीं था, और विद्यालय में डर की एक ऊँची दीवार खड़ी हो गई थी। शिक्षिका को साफ़ समझ आ गया कि अगर पढ़ाई में उसकी थोड़ी मदद की जाए तो वह एक बेहतरीन विद्यार्थी बन सकती है।

शिक्षिका ने उसके बैग की जाँच की। उसमें कोई नोटबुक नहीं मिली। शिक्षिका ने विद्यालय के पुस्तकालय में ज़रूरतमन्द विद्यार्थियों के लिए एक छोटी-सी दुकान बनाई थी जहाँ नोटबुक, पेंसिल, रबर, आदि मिलते थे। वे उन विद्यार्थियों को यह चीज़ें देती थीं जिन्हें

इनकी ज़रूरत होती थी। उन्होंने वहाँ से नोटबुक निकालकर शार्वरी के बैग में रख दी, और कहा कि अगर वह अक्षरों को सुन्दर लिखेगी तो उसे उपहार मिलेगा। शिक्षिका का उसे इतना समय देना, और इतनी आत्मीयता से पेश आना शार्वरी के जीवन में एक बड़ा बदलाव लेकर आया। शिक्षिका के इस साथ से शार्वरी ने पढ़ाई में रुचि दिखाई और लगन के साथ पढ़ना-लिखना शुरू कर दिया। जैसे-जैसे दिन बीतते गए, उसकी लिखावट में सुधार दिखने लगा, और शिक्षिका उसे प्रोत्साहन देने लगीं।

एक दिन शाम को जब शार्वरी घर जा रही थी तब शिक्षिका ने कहा, "रुको, मैं तुम्हारे साथ तुम्हारे घर आती हूँ।" उसे आश्चर्य हुआ और थोड़ी हिचक भी हुई! रास्ते भर शिक्षिका ने उसे शिक्षा का महत्त्व समझाया, और उन महिला-पुरुषों की कहानियाँ सुनाई जिन्होंने कठिनाइयों में भी सफलता पाई। घर पहुँचकर उन्होंने उसके पिता से बात की, और उन्हें बेटी को समय देने को कहा। उन्होंने बच्ची के साथ मिलकर उसके पढ़ने के कोने में विभिन्न चार्ट व्यवस्थित करके लगाए। शार्वरी से कहा कि उसे हर दिन यहीं बैठकर पढ़ना और लिखना है। समय के साथ शार्वरी की पढ़ाई में रुचि बढ़ती गई। शिक्षिका हैरान थीं कि बहुत कम समय में उसने स्पष्ट रूप से पढ़ना और लिखना सीख लिया। उसकी रुचि और बढ़ाने के लिए उन्होंने पुस्तकालय से छोटी कहानियों की किताबें उसे दीं, और कहा कि जब भी घर में मन न लगे तो इन्हें पढ़ा करे। उस दिन से किताबें उसकी सबसे अच्छी दोस्त बन गईं।

शार्वरी गणित में भी आगे थी। पहले, सवाल सही करने के बावजूद शिक्षकों के डर से वह कभी कॉपी दिखाने नहीं जाती थी। लेकिन अब वह सबसे पहले सवाल हल करके दौड़कर आने लगी। इस तरह वह हफ्ते में दो बार क्लास लीडर भी बनी।

विद्यालय में हर महीने अभिभावक सभा (Parent Meeting) होती थी, लेकिन शार्वरी के पिता कभी नहीं आए थे। इस बार शिक्षिका ने खुद फ़ोन करके उसके पिता को अनिवार्य रूप से आने को कहा। इसका एक कारण था। हर महीने की सभा में क्रम से एक-एक विद्यार्थी को 'स्टार ऑफ़ द मंथ' मिलता था। इस बार शार्वरी की बारी थी। स्टार पाने के बाद उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उस दिन से उसकी शिक्षा की गति और तेज़ हो गई। वह पाठ्येतर गतिविधियों में भी बढ़-चढ़कर भाग लेने लगी। वह पढ़ाई में पीछे रहने वाले विद्यार्थियों की भी खुले मन से मदद करने लगी।

अब तक उसके मैले कपड़ों और उलझे बालों के कारण यह मान लेना कि "इसे कुछ नहीं आता" की वजह से उसकी अनदेखी करना और कभी न बुलाने की बात याद कर शिक्षिका ने दुःख से सिर झुका लिया।

अपनी ग़लती का एहसास होने पर उन्होंने शार्वरी से गम्भीरता से माफ़ी माँगी। वे पछताते हुए बोलीं, "ओह, मैंने कितनी बड़ी ग़लती कर दी! सिर्फ़ उसका बाहरी रूप देखकर फ़ैसला कर लिया कि उसे कुछ नहीं आता।"

शिक्षिका का उदास चेहरा देखकर शार्वरी चहकते हुए बोली, "मिस, मिस, मुझे गाना भी आता है!"

"अच्छा! गाकर सुनाओ।" शिक्षिका ने कहा।

शिक्षिका के कहते ही शार्वरी ने बहुत सुरीली आवाज़ में एक गीत गाया। गाना सुनकर शिक्षिका की उदासी छूट गई, और वह मन्द-मन्द मुस्कुराने लगीं।

उन्होंने मन-ही-मन तय किया कि अब वे साथी शिक्षकों के साथ मिलकर बाहरी चेहरा, वेशभूषा, रहन-सहन, पारिवारिक पृष्ठभूमि को किनारे रख सभी विद्यार्थियों के प्रति समान और मानवीय व्यवहार की विद्यालयी संस्कृति को बढ़ावा देने का प्रयास करेंगी।

पवित्रा संतोष, शिक्षिका, सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालय हेल्डगोडी, अनेकल तालुक, बेंगलूर दक्षिण, कर्नाटक

विद्यार्थियों द्वारा धाराप्रवाह पढ़ने से बढ़ने लगा नामांकन

विजय निराला



रीडिंग कॉर्नर कोई कोना नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों की किताबों से दोस्ती का मंच है। किताबें विद्यार्थियों के लिए दुनिया को देखने की खिड़कियाँ खोलती हैं। इसी विचार से प्रेरित होकर मैंने विद्यालय में अपनी सहयोगी के सामने इस तरह की पहल का प्रस्ताव रखा। हमारा उद्देश्य स्पष्ट था—विद्यार्थी अपने भाषाई कौशल यहाँ आजमाएँ, और नए कौशल विकसित कर पाएँ। खासकर, वे खुद से पढ़ने की आदत विकसित कर सकें। हम दोनों को यह काम उत्साह देने वाला लगा। पहले धीरे-धीरे काम शुरू हुआ, और फिर गति पकड़ गया।

आज हमारे विद्यालय में बाल साहित्य की 450 किताबें हैं। इनमें गढ़वाली लोक कथाएँ, *बरखा सीरीज़* के हिन्दी और गढ़वाली संस्करण, *बिल्ली के बच्चे*, *बस पाँच मिनट*, *लालू और पीलू*, *भालू ने खेले फुटबॉल*, *गणित की पहेलियाँ*, और चित्र पुस्तकें आदि शामिल हैं। जैसे-जैसे हम काम करते गए, पुस्तकालय सीखने-सिखाने का केन्द्र बनता गया। विद्यार्थियों में पढ़ने की होड़-सी पैदा हो गई। जब यह नियमित हो गया तब इसके संचालन की ज़िम्मेदारी भी विद्यार्थियों को दी गई। समय-समय पर अलग-अलग विद्यार्थी पुस्तकालय प्रभारी होते हैं। यह ज़िम्मेदारी वे बखूबी निभा रहे हैं। जब कोई किताब फट जाती है, या उसे मरम्मत की ज़रूरत होती है तब उसे किताबों के अस्पताल भेजा जाता है। यानी विद्यार्थी उसको ठीक करते हैं। जो किताब उन्हें अधिक पसन्द होती है, या जो किताब बार-बार इशू हो रही है, उसको दुरुस्त करने के लिए वे अधिक तत्परता दिखाते हैं। *चितकू*, *मुँहपटक* और *धरपटक*, *अम्मा सबकी प्यारी अम्मा*, आदि ऐसी ही कुछ किताबें हैं। कक्षा 5 के विद्यार्थी अमूमन विद्यालय आने के बाद ये काम करते हुए मिल ही जाएँगे। इसी के साथ वे छोटे विद्यार्थियों के साथ मिलकर भी ये काम करते हैं। छोटे विद्यार्थियों में इस तरह से ज़िम्मेदारी का भाव भी जाग रहा है।

हमने हर दिन चौथा कालखण्ड पढ़ने की घण्टी के लिए सुनिश्चित किया है। यानी इस कालखण्ड में खुले मन से पढ़ना है। यह काम किसी और कालखण्ड या ख़ाली समय पर नहीं छोड़ा जाता। यहाँ विद्यार्थी जिस तन्मयता से पढ़ने लगे, हमें भी उनके साथ काम करते हुए मज़ा आने लगा। यह देखना बहुत सुखद था कि पढ़ना सीख गए विद्यार्थी, पढ़ना सीख रहे विद्यार्थियों की मदद कर रहे थे। किताबें विद्यार्थियों की पहुँच में थीं, और बैठने की अच्छी व्यवस्था की गई थी। वे अपनी पसन्द की किताब चुनते, और पढ़ने के लिए बैठ जाते। इस सबसे विद्यालय का माहौल ही बदल गया। हमारे लिए भी काम करने का माहौल बन गया। अब हम गुणवत्ता के लिए काम कर रहे हैं। यानी विद्यार्थी समझ के साथ पढ़ना तो करें ही, लिखने के लिए भी उत्साह दिखाएँ।

हालाँकि, हमारे लिए भी यह प्रयोग नया था, लेकिन हममें भी सीखने का उत्साह ही उत्साह था, जितना विद्यार्थियों में। विद्यार्थियों से उनकी पसन्द की किताबों पर बात की जाती। उनकी राय को धैर्य के साथ सुना जाता। कोई विद्यार्थी किताब पर टिप्पणी करना चाहता तो उसे प्रोत्साहित किया जाता। मसलन, अनीता ने बताया कि उसे *राजा की मुँछें* किताब इसलिए मज़ेदार लगी क्योंकि इसमें खुद की तारीफ़ करने वाले घमण्डी राजा की हरकतों से कई हास्यास्पद घटनाएँ घटती हैं। इसी के साथ विद्यार्थियों का कहानी में आए नए शब्दों व उनके अर्थ से परिचय करवाया जाता। अब वे धैर्य, आत्ममुग्धता, सहानुभूति जैसे शब्दों के अर्थ समझने लगे हैं। साथ ही विद्यार्थियों की नए शब्दों को लिखने की आदत बन गई। सीधे अर्थ बताने की बजाय उनसे अनुमान लगाने को कहा जाता। उदाहरण के लिए, कहानी पढ़ते हुए किसी पेज की आखिरी लाइन पढ़ने के बाद विद्यार्थियों से अनुमान लगाने को कहना कि अगले पेज पर इस कहानी की अगली पंक्ति क्या होगी। उनकी राय से ही किताबों की लेबलिंग की गई। चित्रों पर ज़रूर बात होती। कई बार चित्र पर बातचीत का सिलसिला ही काफ़ी लम्बा हो जाता। यह बातचीत महज़ चित्रों में दिखने वाली चीज़ों और घटनाओं के बारे में नहीं होती, बल्कि इससे विद्यार्थी अपने परिवेश व जीवन सन्दर्भ को नए नज़रिए से देख-सोच पाते। रीडिंग कॉर्नर में चित्र बनवाने का काम भी हो रहा था। कुछ शब्दों में कहानी कहना, कहानी को छोटा करके लिखना, शब्दों से कहानी बनाने का अभ्यास, सुनने की आदत का विकास, आदि काम किए गए। रोल प्ले करने के लिए विद्यार्थियों के साथ मिलकर मुखौटे, वेशभूषा, आदि सामग्रियाँ बनाई गईं।

विद्यार्थी सुबह की सभा, प्रतिभा दिवस, आदि मौकों पर अपनी पढ़ी गई कहानी को प्रस्तुत करने लगे। इससे उनमें कहने का हुनर विकसित हुआ, और मंच पर प्रस्तुति का आत्मविश्वास आया। हम भी यह कोशिश करते कि विद्यार्थियों के साथ बातचीत में उनकी पढ़ी गई किताबों के सन्दर्भ आ सकें।

विद्यार्थी किताबें इशू कराके अपने साथ घर भी ले जाने लगे। इससे अभिभावकों में भी विद्यालय की एक अच्छी छवि बनी। इसका प्रभाव आस-पास के बच्चों और अभिभावकों पर भी पड़ा। हमारे विद्यालय को 'पढ़ने वाला विद्यालय' की पहचान मिली, और अभिभावक अपने बच्चों का दाखिला यहाँ कराने के लिए पूछताछ करने लगे।

तीन साल पहले हमारे विद्यालय में 16 विद्यार्थी थे। विद्यालय की बदलती छवि के बाद यह संख्या 42 तक पहुँच गई। बाल साहित्य का इस्तेमाल विद्यार्थियों के अलावा समुदाय भी कर सके, इसके लिए भी प्रयास किए हैं। अब प्रतिदिन 5-7 लोग विद्यालय से किताबें इशू करवाते हैं। उनकी पसन्द की किताबों में *पंचतंत्र की कहानियाँ* और गढ़वाली लोक कथाएँ शामिल हैं। वार्ड मेम्बर को भी हमने इस पहल से जोड़ा है। एक स्थानीय दवा विक्रेता ने भी हमारे विद्यालय को बाल साहित्य की किताबें दान में दी हैं। यदि सीखने के प्रतिफलों की बात करूँ तो कक्षा 5 के 11 विद्यार्थियों में से 10 धाराप्रवाह पढ़ लेते हैं, और अपने पढ़े हुए को समझा लेते हैं। कक्षा 4 के 11 में से 8 विद्यार्थी समझ के साथ पढ़ लेते हैं, जबकि अन्य कक्षाओं के विद्यार्थी भी बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं। मैं नियमित तौर पर उनके सीखने की प्रगति का आकलन करता हूँ। यह सन्तोष का विषय है कि विद्यार्थी कुशल पाठक तो बन ही रहे हैं, वे कहानियों से जीवन मूल्य भी ग्रहण कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, बिना सोचे-समझे किसी का अनुसरण न करें, मुसीबत में साहस व धैर्य से काम लें, आदि। अब वे खुद से कहानी बनाने लगे हैं। पढ़ने की घण्टी के समय वे खुद की लिखी कहानी एक दूसरे को पढ़ाते हैं। उनमें अवलोकन करने, सराहने और अपनी तरफ़ से टिप्पणी करने की चाह बढ़ी है।

विजय निराला, शिक्षक, प्राथमिक विद्यालय रविग्राम, चमोली, उत्तराखण्ड

हर बच्चा सीख सकता है, आवश्यक है सही आकलन

प्रियंका चोपड़ा



विद्यालयों में कुछ ऐसे विद्यार्थी होते हैं, जिनके बारे में यह मान लिया जाता है कि वे सीख नहीं सकते। मसलन, ऐसे विद्यार्थी हमेशा शैतानी करते हैं, ध्यान से सुनते-पढ़ते नहीं हैं, कक्षा में व्यवधान पैदा करते हैं, आदि। इस पर मेरे मन में कुछ सवाल आते हैं। जैसे—क्या विद्यार्थियों के बारे में इस तरह की पूर्वधारणाएँ बना लेना सही है; क्या उनके इस तरह के व्यवहार के पीछे के कारणों का पता लगाना, और धैर्य के साथ उनका समाधान करना शिक्षक की ज़िम्मेदारी नहीं है; विद्यार्थियों के शैक्षणिक स्तर को उनकी सामाजिक पहचान से जोड़कर कहीं हम उन्हें और अधिक पीछे तो नहीं धकेल रहे; आदि।

अपने विद्यालय में इसी तरह के एक विद्यार्थी रघुवीर से मेरी मुलाकात हुई। वह अभी 11 साल का है, और कक्षा 5 में पढ़ रहा है। विद्यालय नियमित आता है। शुरुआत में दूसरे शिक्षकों और उसके सहपाठियों को यह लगता था कि रघुवीर सीखने में कमज़ोर है। यहाँ तक कि उसे खुद को भी यही लगने लगा था। कक्षा में जब कभी कोई प्रश्न पूछा जाता तो बताने की कोशिश नहीं करता, बल्कि वह दूसरे विद्यार्थियों के उत्तर आने का इन्तज़ार करता। अभ्यास पुस्तिका में प्रश्न हल करते समय वह अन्य विद्यार्थियों के उत्तर देखने का प्रयास करता, और बिना सोचे-समझे उनको सीधा ही लिख लेता। उसने अपनी यह आदत तब तक नहीं बदली जब तक उसे यह विश्वास नहीं दिला दिया गया कि अन्य विद्यार्थियों का उत्तर भी ग़लत हो सकता है और उसका सही।

हालाँकि, शुरुआती दिनों में मुझे भी यही लगा था कि अन्य विद्यार्थियों की तुलना में उसकी सोचने-समझने की क्षमता कम है, लेकिन क्या उसे मन्दबुद्धि या पढ़ने में कमज़ोर कहना उचित है? कुछ प्रशिक्षणों से जुड़कर यह समझ आया कि विद्यार्थियों को लेबल किया जाना ठीक नहीं होता है। नकारात्मक लेबल किए जाने से विद्यार्थी कुण्ठाग्रस्त हो जाते हैं, और उनकी आन्तरिक प्रेरणा ख़त्म होने लगती है।

मैंने रघुवीर के क्रियाकलापों का ध्यान से अवलोकन करना शुरू किया, और पाया कि अपनी बात को रखने का उसका अपना एक अलग तरीका है। ध्यान दिया कि वह अपनी बात तब तक व्यक्त नहीं करता जब तक वह आश्वस्त नहीं हो जाता कि उसे सुना जा रहा है। दरअसल उसके आस-पास होने वाली बातचीत, "रघुवीर तो धीरे-धीरे सीखता है"; "दिमाग से थोड़ा कमज़ोर है"; ने उसके मन को उदास कर दिया था। वह अपने विचार रखने का आत्मविश्वास खो चुका था।

उसकी मनःस्थिति को समझने के लिए मैंने पढ़ाई के अलावा दूसरे बिन्दुओं पर भी उससे मध्याह्न भोजन के दौरान बातचीत करनी शुरू की। जैसे—विद्यालय से जाने के बाद वह घर पर क्या करता है; कहाँ घूमने जाता है; उसे क्या पसन्द है; आदि। धीरे-धीरे उसकी हिचक कम होने लगी, और वह मुझसे थोड़ी-थोड़ी बात करने लगा। वह बताता कि उसे इलेक्ट्रॉनिक चीज़ों से खेलना बहुत पसन्द है। वह इंजीनियर बनना चाहता है। जब उसे पढ़ाई में परेशानी आती है, उसका दोस्त प्रवीण उसकी मदद करता है। जब वह मुझसे बात करने में सहज हुआ तब कक्षा में उसकी सक्रियता भी बढ़ने लगी। मैंने उसे यह कहकर प्रोत्साहित किया कि तुमको जैसा आता है, तुम अपनी बात रखो। साथ ही इस बात का विशेष ध्यान रखा कि कक्षा का कोई विद्यार्थी रघुवीर के बारे में कोई नकारात्मक टिप्पणी न करे। थोड़ा समय लगा लेकिन धीरे-धीरे उसका आत्मविश्वास लौटने लगा, और अन्य विद्यार्थियों की तरह वह भी प्रश्न पूछने लगा और अपने अनुभव प्रकट करने लगा। सत्र पूरा होते-होते वह प्रार्थना सभा के दौरान कविताएँ, पहेलियाँ, कहानियाँ, आदि सुनाने के लिए स्वतः ही आगे आने लगा। इससे शिक्षक व अन्य विद्यार्थियों का उसके प्रति नज़रिया बदलने लगा।

कक्षा शिक्षण के दौरान कई ऐसी घटनाएँ हुईं जिनसे मेरा यह विश्वास पक्का हुआ कि रघुवीर बाक़ी विद्यार्थियों की तरह ही सामान्य बुद्धि का बालक है।

एक दिन मैं गणित में परिमाप व क्षेत्रफल का अध्याय पढ़ा रही थी। बोर्ड पर एक बड़े आयत की आकृति में छोटे-छोटे वर्ग बनाकर क्षेत्रफल समझाने की कोशिश कर रही थी। इस दौरान अन्तिम पंक्ति में बने वर्ग, आयत जैसे बन गए। इनमें इतना सूक्ष्म अन्तर था कि अन्य विद्यार्थियों की तरह मेरा ध्यान भी उस तरफ़ नहीं गया। जब अन्तिम पंक्ति में बने आयत को मैंने वर्ग के रूप में गिना तो रघुवीर ने कहा, "मैम, ये वर्ग नहीं आयत हैं।" मैंने उन्हें ग़ौर से देखा तब समझ आया कि मुझसे क्या ग़लती हो रही है। रघुवीर ने बहुत सूक्ष्म निरीक्षण किया था।

शुरुआत में रघुवीर प्रार्थना सभा में कहानी-कविता सुनाने में हिचकता था। एक दिन प्रार्थना सभा में विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी की कविताएँ हाव-भाव के साथ सुनाने का अवसर दिया गया। इस पर वह धीरे से खड़ा हुआ, और सबके सामने आकर उसने हाव-भाव के साथ कविता गाई। हालाँकि वह बीच में थोड़ा अटका भी, लेकिन मैंने उसकी मदद की और उसने पूरी कविता सुना दी। इस पर बाक़ी विद्यार्थियों ने उसके लिए तालियाँ बजाईं। स्टाफ़ के शिक्षकों ने भी रघुवीर की तारीफ़ की।

रघुवीर के व्यवहार और अपेक्षित रूप से नहीं सीख पाने के पीछे के कारणों पता चलने लगा। जैसे—कक्षा के बाकी विद्यार्थियों और उसके बीच सीखने का अन्तर। इससे पढ़ाई जाने वाली नई चीजें उसके लिए ज्यादा चुनौतीपूर्ण हो गईं। वह कक्षा में सिखाई जा रही विषयवस्तु के साथ जुड़ नहीं पाता था।

कालान्तर में शिक्षकों के सहयोगपूर्ण रवैए से उसके व्यवहार में बदलाव आया। कक्षा में अब वह सक्रियता से भाग लेता है, समस्या समाधान का प्रयास करता है, तथा विद्यालय में होने वाली सामूहिक गतिविधियों में भी शामिल होता है।

प्रियंका चोपड़ा, शिक्षिका, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय मारखेड़ा, टोंक, राजस्थान

विद्यार्थियों पर विश्वास जताने से आया बदलाव

सत्यवती



जब मैंने शासकीय प्राथमिक शाला गोढ़ी की कक्षा 4 का कार्य सँभाला, कक्षा में कुल 9 विद्यार्थी नामांकित थे। बाहर से देखने पर कक्षा सामान्य लगती थी, पर भीतर एक अजीब-सा खालीपन और चुप्पी थी। विद्यार्थियों की आँखों में जिज्ञासा कम और संकोच अधिक दिखाई देता था। सत्यपाल, सुनयना और कुसुमकला ऐसे विद्यार्थी थे जो नियमित रूप से विद्यालय नहीं आते थे। कभी-कभी जब वे आते भी तो कक्षा की किसी भी गतिविधि में भाग नहीं लेते थे। चुपचाप बैठे रहते। न किताब खोलते, न लिखते, और न ही किसी से बात करते। उस समय मुझे यह स्पष्ट दिख रहा था कि समस्या विद्यार्थियों में नहीं, बल्कि उस वातावरण में है जिसमें वे स्वयं को असुरक्षित और अस्वीकृत महसूस कर रहे हैं।

पिछले साल मैंने शिक्षक-अभिभावक संघ की बैठक में पठन-पाठन से जुड़ा एक खुला कोना बनाने का विचार साझा किया था। इसमें माताएँ भी शामिल थीं। इस कोने में विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार चित्र बनाते, कविता लिखते, छोटी-छोटी कहानियाँ गढ़ते, और समूह में मिलकर गतिविधियाँ करते थे। उस अनुभव से मुझे यह समझ में आया कि जब विद्यार्थियों को स्वतंत्रता और भरोसा मिलता है तो वे स्वयं सीखने की दिशा में आगे बढ़ते हैं। उसी अनुभव के आधार पर मैंने कक्षा 4 में भी बदलाव करने का निर्णय लिया।

शुरुआत में यह तय किया कि इन विद्यार्थियों को बदलने से पहले उन्हें समझना ज़रूरी है। मैंने खुद से कहा कि यदि मैं उन्हें बार-बार रोकूँ-टोकूँ या ज़बरदस्ती पढ़ाने का प्रयास करूँ तो सम्भव है वे और दूर हो जाएँ। इसलिए मैंने उन्हें स्वतंत्र छोड़ने का निर्णय लिया। मैंने उनसे यह अपेक्षा नहीं रखी कि वे तुरन्त पढ़ाई में लग जाएँ। मेरा उद्देश्य एक ऐसी कक्षा बनाना था, जहाँ विद्यार्थी बिना डर के आ सकें, बैठ सकें, और स्वयं को स्वीकार्य महसूस कर सकें।

मैं रोज़ कक्षा में जाती और विद्यार्थियों के पास बैठ जाती। कभी उनसे हल्की-सी बात करती, कभी बस मुस्करा देती। यदि कोई विद्यार्थी पूरे समय शान्त बैठा रहता तो उसे टोकती नहीं थी। धीरे-धीरे मैंने उनकी रुचियों को समझना शुरू किया। कोई विद्यार्थी केवल दूसरों को देखना चाहता था, कोई चित्र बनाना पसन्द करता था, तो कोई दोस्तों के साथ बातें करना। मैंने इन सभी व्यवहारों को स्वाभाविक मानकर स्वीकार किया, क्योंकि मेरा लक्ष्य पढ़ाई थोपना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों को विद्यालय से जोड़ना था।

कक्षा में मैंने समूह कार्य को बढ़ावा दिया ताकि विद्यार्थी एक दूसरे से सीख सकें। जब विद्यार्थी एक दूसरे के साथ काम करते हैं तो वे अधिक सहज होते हैं, और अपनी बात कहने का साहस जुटा पाते हैं। मैंने यह भी देखा कि जब विद्यार्थियों को विषय-आधारित कॉपी कार्य में तुरन्त नहीं बाँधा गया तो उनमें रचनात्मकता उभरने लगी। वे विषय के प्रश्नों के उत्तर रटने की बजाय अपने शब्दों में सोचने और अभिव्यक्त करने लगे।

यह प्रक्रिया आसान नहीं थी। कई अवसर ऐसे भी आए जब कोई विशेष बदलाव दिखाई नहीं देता था, पर मैंने धैर्य और विद्यार्थियों के प्रति अपना प्रेम और सहयोग लगातार बनाए रखा। कुछ समय बाद देखा कि सत्यपाल, सुनयना और कुसुमकला अब पहले की तुलना में अधिक नियमित रूप से विद्यालय आने लगे हैं। जो विद्यार्थी पहले कक्षा में चुपचाप बैठे रहते थे, अब आस-पास हो रही गतिविधियों को देखने, समझने और उनमें शामिल होने लगे थे। यह बदलाव था तो छोटा, लेकिन बहुत महत्वपूर्ण था।

धीरे-धीरे विद्यार्थियों में ज़िम्मेदारी का भाव आने लगा। वे अब केवल उपस्थित नहीं रहते थे, बल्कि अपने कार्य को स्वयं करने का प्रयास करने लगे थे। एक दिन उनसे कहा कि वे अपनी इच्छा से कुछ भी लिख सकते हैं—कोई अनुभव, कोई घटना या कोई कहानी। मैंने स्पष्ट कर दिया कि इसमें सही-गलत का कोई डर नहीं है। यह सुनकर छत्रपाल ने स्वयं आगे बढ़कर कॉपी खोली, और लिखना शुरू कर दिया। यह वही विद्यार्थी था जो पहले लिखने से भी बचता था।

छत्रपाल ने मकर संक्रांति पर आधारित एक कहानी लिखी। उसने लिखा कि त्योहार के दिन घर में कैसा माहौल था; कैसे सुबह से ही उत्साह था; और फिर वह अपने दोस्तों के साथ घूमने गया। उसने बताया कि वे सब साथ में घूमते-घूमते दुकानों तक पहुँचे जहाँ उन्हें चॉकलेट भी मिली। उसने आगे लिखा कि त्योहार के अवसर पर पिकनिक रखी गई थी जिसमें सभी दोस्तों ने दाल, चावल और स्थानीय भाजी मिलकर खाई। उसकी कहानी में यह बात साफ़ थी कि भोजन से अधिक उसे दोस्तों के साथ होने का आनन्द याद था।

जब उसने अपनी कहानी पूरी की तो वह स्वयं चलकर मेरे पास आया, और अपनी कॉपी दिखाई। उस क्षण मुझे महसूस हुआ कि जिस विद्यार्थी को कभी विद्यालय आने में भी रुचि नहीं थी, वही अब अपने अनुभवों को शब्दों में ढाल पा रहा है। यह परिवर्तन किसी एक दिन में नहीं आया था, बल्कि निरन्तर प्रेम, स्वतंत्रता, समूह कार्य और विश्वास से विद्यार्थियों का साथ देने का परिणाम था।

इस पूरे कार्य के दौरान मैं स्वयं भी लगातार पढ़ती और सीखती रही। विशेष रूप से लेखक ए एस नील की लिखी पुस्तक *समरहिल* ने मुझे गहराई से प्रभावित किया। इस पुस्तक को बार-बार पढ़ना और समझना मेरे लिए विद्यार्थियों को पढ़ाने से पहले अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ।

आज जब अपनी कक्षा को देखती हूँ तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि जब शिक्षक स्वयं सीखता रहता है, और विद्यार्थियों के साथ प्रेम व विश्वास के रिश्ते में जुड़ा रहता है तो उनमें व्यावहारिक ही नहीं, बल्कि शैक्षणिक परिवर्तन भी स्वाभाविक रूप से दिखाई देने लगता है। यह अनुभव मेरे लिए यह विश्वास और मज़बूत करता है कि एक बेहतर कक्षा अनुशासन से नहीं, बल्कि स्वतंत्रता, समझ और निरन्तर प्रेम से बनती है।

सत्यवती, शिक्षिका, प्राथमिक शाला गोढ़ी, रायगढ़, छत्तीसगढ़